इकाई 13 युद्धोत्तर विश्व की झलक-I

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 यूरोप में बदलता शक्ति सन्तुलन

13.2.1 तात्कालिक मुद्दे और उन्हें हल करने के प्रयास

13.3 विश्व के शक्ति सन्तुलन में परिवर्तन

13.4 शीतयुद्ध

13.5 शताब्दी का अन्तिम चौथाई भाग तथा समाजवाद का धराशायी होना

13.6 सारांश

13.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम निम्न के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे :

- द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् के राजनैतिक परिवर्तन, औनिवेशीकरण की समाप्ति की प्रक्रिया, शीतयुद्ध तथा अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों का सन्तुलन;
- गुटनिरपेक्ष विश्व की प्रेरणाएं, उसके नेता तथा उनके उद्देश्य;
- समाजवाद के कारण उत्पन्न हुई चुनौतियाँ; और
- बीसवीं शताब्दी के महत्वपूर्ण सरोकार।

13.1 प्रस्तावना

आप इससे पहली इकाइयों में प्रथम विश्व युद्ध के बाद आए परिवर्तनों के बारे में पढ़ चुके हैं। इस इकाई में हम द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के परिदृश्यों का विश्लेषण तथा व्याख्या करेंगे तथा देखेंगे कि इसमें क्या राजनीतिक बदलाव आए थे। इन परिवर्तनों के साथ वह विकास भी सम्मिलित थे। जिन्होंने शक्ति सन्तुलन को परिवर्तित करके नव स्वतन्त्र राष्ट्रों के रूप में उन नए राष्ट्रों को सामने लाया जो इससे पहले पराधीन थे। इस युद्ध के पश्चात् बहुत से राजनीतिक परिवर्तन हुए विशेषकर औपनिवेशीकरण के अन्त के परिणामस्वरूप जो शक्तियों का संतुलन बदल गया था। विश्व युद्धोत्तर विश्व की पहली अर्द्धशताब्दी को इस काल में तेज गति से बढ़ते हुए क्रान्ति के आधार पर देखा जा सकता है। 1917 में रूस में हुई बोल्शेविक क्रान्ति से नए समाजवादी राज्य के उद्भव तक तथा विशिष्ट रूप से चीन, वियतनाम तथा क्यूबा की क्रान्ति तथा अल्जीरिया में फ्रेंच शासन के विरूद्ध वीरोचित्त स्वतन्त्रता का संघर्ष प्रमुख था। राष्ट्रीय मुक्ति तथा समाजवाद ने विश्व राजनीति का रंग ही बदल दिया था। मुक्ति के लिए नई ऊर्जा के साथ जन आंदोलनों को आगे बढ़ाना इसका प्रमुख अंग था।

फासीवाद को हराने में तथा राष्ट्रीय मुक्ति के लिए राज्यों की सहायता करके सोवियत संघ एक हीरो के रूप में पहचाना गया और यह युद्धोत्तर विश्व की एक निर्धारक शक्ति वन

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

गया। इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका भी था जिसने मित्र राज्यों की ओर से युद्ध में भाग लिया था। इस प्रकार हम युद्धोत्तर विश्व को इन दो राष्ट्रों के बीच प्रतियोगिता तथा संघर्ष के रूप में चित्रित कर सकते हैं। इनकी विचारधारा तथा राजनीतिक व्यवस्था बहुत भिन्न थी। ये दो विपरीत विचारधाराओं के बीच एक प्रकार से संघर्ष था जिसमें सोवियत संघ समाजवाद तथा अमेरिका पूंजीवाद का प्रतिनिधित्व कर रहा था। इस टकराव ने पूरे विश्व को अपने लपेट में ले लिया था चाहे वह प्रत्यक्ष रूप से न हो। दोनों एक दूसरे के साथ सीधे मुकाबले को टालने में सफल रहे परंतु ज्यादा समय तक शान्ति को कायम नहीं रखा जा सका था और यह कभी-कभी काफी तीव्र था।

इस इकाई में हम शीतयुद्ध के परिदृश्य में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में सम्मिलित देशों, जो तीसरी दुनिया के देश कहलाते हैं, की चर्चा भी करेंगे, उन्होंने भी यूरोप तथा विश्व राजनीति को प्रभावित किया था। यह प्राथमिक रूप से यूरोपीयन इतिहास का पाठ्यक्रम है इसलिए हम इन नए देशों के राष्ट्रवाद के प्रक्षेप-पथ के अनुभवों पर नहीं जाएंगे बल्कि इसके स्थान पर यह जानने का प्रयास करेंगे कि ये यूरोप के विकासों को कैसे प्रभावित करते हैं या यूरोपीय विकासों से ये राष्ट्र कैसे प्रभावित हुए।

13.2 यूरोप में बदलता शक्ति सन्तुलन

जर्मनी जो एक दुर्जेय राजनीतिक शक्ति द्वितीय विश्व युद्ध में हार गई थी वहां नाजी शासन पूरी तरह से विघटित हो गया था। इस पर अधिकार करके चार भागों में विभाजित कर दिया गया था जिसका विस्तृत निर्णय बाद में होना था। अन्ततः जर्मनी को दो देशों में विभाजित कर दिया गया था पहला जर्मन लोकतान्त्रिक रिपब्लिक (GDR) जिसने समाजवादी ढांचे तथा राजनीतिक विकास को अपनाया था। दूसरा संघीय रिपब्लिक ऑफ जर्मनी (FRG) जिसने पूंजीवादी मॉडल की आर्थिक एवं राजनीतिक नीतियों को अपनाया था और पश्चिमी देशों के साथ गठबंधन किया।

इंग्लैंड जो जर्मन सेना की भारी बमबारी के कारण उजड़ गया था, उसे अपनी आर्थिक भरपाई के लिए अमेरिका पर निर्भर होना पड़ा था। इससे भी बढ़कर इंग्लैंड को अपने साम्राज्य को संभाल पाना असंभव हो गया था। इसलिए उसने अधीन उपनिवेशों को स्वतंत्रता प्राप्त की। जिसकी शुरुआत 1947 में भारतीय उपमहाद्वीप से हुई थी। फ्रांस के लिए यह प्रक्रिया लम्बी चली थी। उसे बहुत लम्बे समय अपने प्रभुत्व का मजा लेने का मौका नहीं मिला था। अमेरिका तथा सोवियत संघ अब अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में निर्णायक भूमिका अदा करने में सक्षम हो गए थे।

सोवियत संघ ने भी इन युद्धों में भारी नुकसान उठाया था, परंतु उसने अपनी युद्धोत्तर शक्ति राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों की हिमायत करके पुनः अर्जित कर ली थी। पूर्वी यूरोपीय देशों में जनवादी उद्भव तथा सोवियत संघ के साथ जुड़ने से भी सोवियत संघ की यूरोप तथा विश्व राजनीति में शक्तिशाली स्थिति बन गई थी। जापान एक हारा हुआ पक्ष था जो अमेरिका द्वारा हिरोशिमा तथा नागासाकी परमाणु बम से हमले के कारण भयानक बर्बादी के कारण विनाश झेल रहा था। आज जापान एक शक्तिशाली अर्थव्यवस्था है परंतु परमाणु हमले के प्रभाव अभी भी हैं। इसके अलावा वह कुछ समय तक अमेरिका के नियंत्रण में भी रखा गया था।

अमेरिका ही उस समय ऐसी अर्थव्यवस्था थी जो युद्ध के कठोर प्रभावों से बचा हुआ था क्योंकि युद्ध इसकी सीमाओं से दूर हुआ था। परंतु इसका विरोधाभास यह था कि वहां की अर्थव्यवस्था पर युद्ध की आवश्यकताओं का और शस्त्र निर्माण का अर्थव्यवस्था पर अनुकूल प्रभाव पड़ा था। इसलिए इसने युद्धोत्तर यूरोप के पुनर्निर्माण में अहम भूमिका अदा की थी और परिणामस्वरूप युद्धोत्तर भूमिका में भी आर्थिक और राजनैतिक ताकत हासिल की।

13.2.1 तात्कालिक मुद्दे तथा उन्हें हल करने के प्रयास

उस समय यूरोपीय देशों के सामने तात्कालिक मुद्दे अनेक थे तथा उनमें हितों के अनुसार विरोधाभास भी थे। परंतु उनका केन्द्रीय विरोधाभास समाजवाद तथा पूंजीवाद के बीच था। इनके समाधान के लिए जो राजनीतिक व्यवस्था तथा आर्थिक समाधान आए थे उनमें इन दो विपरीत विचारधाराओं और व्यवस्थाओं के इस प्रमुख टकराव को प्रतिबिम्बित करते हैं। फासीवाद की हार के पश्चात् पश्चिमी तथा मध्य यूरोप में आवश्यकता या तो नई मजबूत उदारवादी लोकतान्त्रिक संस्थाओं के पूनर्निर्माण की थी। पहले मौजूद थी या बोलशेविक क्रांति और सोवियत शासन के अनुभवों के साथ समाजवादी प्रजातंत्र के सिद्धांतों पर पुनर्निर्माण की। युद्ध के पश्चात् मिले दोनों विकल्पों में से कोई भी अपनाना उस गंभीर और आर्थिक संकट के समय में मुश्किल था। सोवियत संघ तथा समाजवाद के प्रति पश्चिमी विश्व में जो शत्रुता थी जर्मनी की हार के पश्चात् पुनः उभर रही थी।

इसके अलावा, राष्ट्र-राज्यों का पदानुक्रम अब मान्य नहीं था इसलिए विजयी शक्तियों द्वारा नई राजनैतिक व्यवस्थायें बनाई गई थी। उनके लिए अलग-अलग क्षेत्रों में समाजवादी तथा पूंजीवादियों की शक्ति द्वारा नई राज्यों की सीमाओं को प्रभावित किया जा रहा था। उदाहरण के लिए पश्चिमी विश्व तथा सोवियत संघ के अलग-अलग अपने रास्ते थे। उसके साथ उन देशों की घरेलू परिस्थितियों की पहचान कर, उनका भी पुनर्गठन किया जा रहा था। वामपंथियों द्वारा फासीवाद का विरोध बनाए रखने के लिए वे विभिन्न देशों में शक्ति पाने के लिए दक्षिणपंथियों के विरूद्ध संघर्ष किया गया था। जातीयता के विचार भी राजनीतिक निर्णयों को लेने में प्रबल भूमिका निभा रहे थे।

युगोस्लाविया में राजतंत्रवादियों द्वारा साम्यवादी राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे, जिसका नेतृत्व जोसेफ टिटो कर रहे थे, का विरोध किया गया परंतु वे हार गए थे। पौलैण्ड के क्षेत्रों में जो की जर्मनी के अधीन थे और मित्र राष्ट्रों के प्रभाव में थे, उनके बीच मतभेद हो रहे थे। पौलैण्ड, हंगरी, चेकोस्लोवाकिया तथा बुलगेरिया ऐसे जनवादी लोकतंत्र बन गए थे जहां बहुपार्टी व्यवस्था अपनाई गई थी लेकिन मजबूत साम्यवादी पार्टियों के साथ, वह निकटता से सोवियत संघ के सहयोगी बन गए। ऑस्ट्रिया से सभी युद्धरत सेनाओं को वापस बुलाने के बाद ऑस्ट्रिया एक निष्पक्ष राज्य के रूप में उभरा था (स्विटजरलैंड की तर्ज पर) इस प्रकार यूरोप में क्षेत्रों और सीमाओं के पुनर्गठन का प्रश्न राजनैतिक, संस्थाओं की पुनर्स्थापना से जुड़ गया था।

हर देश को इस चुनौती का सामना करना पड़ रहा था कि वे कैसे अपनी अर्थव्यवस्था में सुधार करें। प्रमुखतः इस संक्रमण काल में यह महत्वपूर्ण था क्योंकि युद्ध के समय की अर्थव्यवस्था को शान्तिकालीन अर्थव्यवस्था बनाने के लिए नीतियों तथा विकास की रणनीतियाँ तय करनी थी। यद्यपि अर्थव्यवस्था का प्रश्न अपरिहार्य रूप से राज्य की प्रकृति से जुड़ा हुआ था। उदाहरण के लिए, समाजवाद तथा पूंजीवाद की दिशा में किसका अनुशरण यह कर रहा था। अमेरीका के संदर्भ में मार्शल प्लान लाया गया था इसमें शुरुआत में दस बिलियन डालर पूरे यूरोप में स्थानांतरित किए गए थे। इसका उद्देश्य यह था कि बीस वर्ष के काल में यूरोपीय देशों की अर्थव्यवस्थाओं का पुनर्निर्माण हो सके। इसके लिए यह तर्क दिया गया कि इस पैसे के प्रवाह से इन युद्धों में तबाह हुई अर्थव्यवस्थाओं को मदद मिलेगी। जो साम्यवादी विचारों वाली अर्थव्यवस्थाओं का प्रति उत्तर दे सकेंगी और उन्हें स्थायित्व मिलेगा तथा वे पूंजीवाद को बढ़ावा देने वाले राजनीतिक वातावरण को अपनाएंगे और सोवियत संघ के विरोध में अमेरिका का साथ देगें।

इसके अतिरिक्त 4 अप्रैल 1949 को अमेरिका तथा यूरोपीय देशों के बीच नार्थ एटलांटिक संधि (NATO) हुई थी इसका उद्देश्य 'साम्यवाद की रोकथाम' करना था। प्रारंभ में ये

देश आपस में मुख्य रूप से साम्यवाद को रोकने के लिए एक सैन्य गठबंधन के अन्तर्गत जुड़े थे। इसमें अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम, कनाडा, डेनमार्क, आइसलैण्ड, इटली, नीदरलैण्ड, नार्वे तथा पूर्तगाल थे, बाद में ग्रीस तथा पश्चिमी जर्मनी भी नाटो में शामिल हो गए थे।

13.3 विश्व के शक्ति सन्तुलन में परिवर्तन

द्वितीय विश्व युद्ध के पहले विभिन्न महाद्वीपों में लाखों लोग औपनिवेशिक साम्राज्यों के अधीन रहते थे उनका भाग्य तथा जीवन स्तर उन पर शासन करने वाले साम्राज्यवादी राष्ट्रों पर ही निर्भर था। उन की स्थिति नागरिकों की नहीं बल्कि प्रजा की थी। युद्ध के पश्चात् 1945 से 1980 के बीच पूरे एशिया तथा अफ्रीका महाद्वीप के साथ-साथ पश्चिमी प्रशान्त महासागर के केन्द्रीय द्वीप, केरेबियन क्षेत्र के द्वीप भी स्वतंत्र राष्ट्र बन गए थे। अनिवार्य रूप से इस प्रक्रिया ने उन साम्राज्यवादी देशों को प्रभावित किया जिन्होंने युद्ध को आरंभ किया था।

1950 तक इन्डोचीन को छोड़कर पूरा एशिया औपनिवेशिकरण से मुक्त हो गया था। 1950 के दशक और 1960 के दशक के बीच अफ्रीका स्वतंत्र हो गया। ब्रिटिश केरेबियन उपनिवेश 1960 के दशक में स्वतंत्र घोषित हो गए तथा अन्य छोटे द्वीप 1960 से 1981 के बीच। इसके अलावा भारत तथा प्रशान्त सागर के द्वीप 1960 और 1970 के दशकों में स्वतंत्र हो गए। 1970 तक बड़े उपनिवेशों में केन्द्रीय, तथा दक्षिण अफ्रीका के देश जहाँ साम्राज्यवादी नागरिक बसे हुए थे तथा वियतनाम बचे हुए थे। इन्होंने भी लम्बे संघर्षों के पश्चात 1970 के दशक में स्वतंत्रता प्राप्त की। उन्होंने यह स्वतंत्रता बड़ी कठिनाई एवं संघर्ष के पश्चात् प्राप्त की थी। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में हजारों लोग जेल गए थे लेकिन भारत को स्वतंत्रता के साथ विभाजन का दुर्भाग्य अपनाना पड़ा था। इसमें बहुत बड़े अनुपात में लोगों को समस्याओं का सामना करना पड़ा था। 1949 तक चीन से भी जापानी, फ्रेंच, ब्रिटिशों को साम्यवादी सैनिकों द्वारा चीन के राष्ट्रीय क्षेत्र से बाहर निकाल दिया गया था। अलजीरिया, इण्डोनेशिया, मलेशिया, अंगोला, मोजाम्बिक तथा अन्य देशों ने बड़े लम्बे तथा कठिन सशस्त्र संघर्ष और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों के द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त की थी। 1950 के दशक में सुकार्नो ने इण्डोनेशिया में स्वतंत्रता संघर्ष का नेतृत्व किया। औपनिवेशीकरण की समाप्ति की इस लम्बी और विस्तृत प्रकृति इस बात से भी समझी जा सकती है कि दक्षिण अफ्रीका से नस्ली भेदभाव को बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में ही समाप्त किया जा सका। ब्रिटेन ने हांगकांग और पुर्तगाल ने मकाओ चीन को 1997 में ही वापस किया।

आजकल मध्यपूर्व (Middle East) के नाम से जाने जाने वाले क्षेत्रों में लोकतांत्रिक शासन की शुरुआत भी हुई थी। ईरान में एक शक्तिशाली साम्यवादी पार्टी भी उभरी थी। इराक में एक धर्मनिरपेक्ष सरकार स्थापित थी। ये क्षेत्र तेल तथा खनिज बहुल क्षेत्र थे, परंतु उनका स्वतंत्र शासन अन्ततः धराशायी हो गया क्योंकि उनकी राजनीति को आधारभूत रूप से साम्राज्यवादी ताकत अमेरिका द्वारा ही संचालित किया जा रहा था। यही स्थिति तथा दुर्भाग्य फिलिस्तीन का भी था।

औपनिवेशीकरण की समाप्ति का पहला बड़ा प्रभाव यह पड़ा था कि इससे एकदम देशों की कुल संख्या तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में सदस्यों की संख्या बढ़ गई थी। औपचारिक रूप से सभी नव उदित राष्ट्र राज्यों को समान माना जाता था, और व्यावहारिक रूप में उनको अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों और वार्तालापों में स्थान देना पड़ता था। परंतु वास्तव में उनके साथ समानता का व्यवहार नहीं होता है। देशों के हितों के एक फ्रेमवर्क के अन्तर्गत प्रमुख मुद्दे

है आर्थिक विकास, नस्लीय समानता तथा देशी लोगों के अधिकार जिन्हें स्थान मिलना चाहिए था। अन्तर्राष्ट्रीय मसौदों में वैधता और भागीदारी की भाषा को बल के स्थान पर जगह मिलनी चाहिए।

नए राष्ट्रों का पहले उनके ऊपर शासन करने वाले देशों के साथ संबंध, सहयोग तथा विरोध दोनों पर आधारित था। इन राष्ट्रों ने सहयोग इस लिये किया था क्योंकि इससे उन्हें सहायता राशि की आवश्यकता थी तथा विरोध इसलिए कि स्वयं के हितों की सौदेवाजी के लिए ताकि साम्राज्यवादी व्यवस्था पहले की शोषण तथा पूर्व के हड़पने की नीतियों को लागू न कर सके।

इन राष्ट्रों के द्वारा साझे राष्ट्रीय स्वतंत्रता तथा विकास के उद्देश्य के लिए विभिन्न संगठनों की स्थापना की गई थी। उदाहरण के लिए अफ्रीकन यूनिटी (O.AU. 1963) का उद्देश्य औपनिवेशिक ताकतों को अपने अधीन क्षेत्रों से नियंत्रण हटाने के लिए बाध्य करना और स्वयं के विकास के लिए पारस्परिक सहयोग करना था। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन (NAM) की स्थापना असमान विश्व में बेहतर विकास के लिए सहयोग करने के लिए की गई थी। 1955 में बांडुंग सम्मेलन इण्डोनेशिया में, साम्राज्यवाद, नस्लवाद तथा परमाणु हथियारों के विरूद्ध एक मील का पत्थर था। इसका तर्क था कि तीसरे विश्व कहे जाने वाले नव स्वतंत्र राष्ट्रों को स्वतंत्र रूप से विकास करने देना चाहिए। इस गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में 29 देशों के नेताओं ने शिरकत की थी। उसी समय इन देशों ने सोवियत संघ तथा अमेरिका दोनों से तथा संयुक्त राष्ट्र संघ से सहयोग के लिए अपील की थी। सयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) की अमेरिका द्वारा 1945 में अपने सहयोगी विकसित देशों के सहयोग से स्थापना की गई थी। गुटनिरपेक्ष संघ (NAM) ने भी अपने हितों के लिए इसका समर्थन किया था। इसके अतिरिक्त अन्य संस्थाएं भी बनी थी। पश्चिमी प्रभुत्वशाली शक्तियों से अपने क्षेत्रीय एवं विशेष हितों का ध्यान रखने के लिए दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों की संस्था 'आसियान' (ASEAN) तथा पेट्रोल निर्यातक देशों का समूह (OPEC) स्थापित किए गए थे।

हम इन देशों की मध्यमार्ग की अभिलाषाओं के विस्तार में नहीं जाएगे कि कैसे उन्होंने समाजवाद तथा लोकतंत्र के रास्ते चुनने में एक दूसरे का सहयोग किया था। लेकिन यह रेखांकित करना भी महत्वपूर्ण है कि जैसे औपनिवेशीकरण और राजनैतिक नियंत्रण ने न केवल उपनिवेशों को प्रभावित किया था बल्कि उन यूरोपीय देशों को भी जिन्होंने उन्हें उपनिवेश बनाया था। इसी प्रकार औपनिवेशीकरण की समाप्ति तथा उपनिवेशों की स्वतंत्रता ने युद्धोत्तर यूरोप को प्रभावित किया था। वास्तव में यूरोप के इतिहास को तब तक पूरी तरह नहीं समझा जा सकता है तब तक उसे पूरे विश्व के साथ जोड़ कर न देखा जाए। विशेष रूप से सोलहवीं शताब्दी के बाद पूंजीवाद के आरम्भ तथा विश्व आर्थिक व्यवस्था के साथ एशिया तथा अफ्रीका के अल्प विकास को विकसित देशों के साथ जोड़कर ही यूरोप के विकास को समझा जा सकता है।

युद्धोत्तर विश्व में यह तथ्य स्पष्ट हो रहा है कि नवस्वतंत्र देशों के दावों और विरोधों को संभालने के लिए साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धाओं को छोड़कर उन्हें भी परस्पर सहयोग अपनाना पड़ेगा। यह उन नए अन्तर्राष्ट्रीय पहलों तथा नई अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना से स्पष्ट था जिनमें कि नव नवोदित देशों को शामिल किया गया था और यह एक ऐसा सम्बंध था जिसमें अब भी निर्णय लेने में पूर्व सम्राज्यवादी देशों का प्रभुत्व स्थापित था और यह उनके सामान्य हित में विश्व के मामलों के संचालन की अनुमति भी देता था। दूसरा यह दृष्टिकोण उनकी कूटनीति तथा उत्पीड़क चालों से भी स्पष्ट था जो सोवियत यूनियन को अलग-थलग रखने के लिए चली गई थीं और इसमें पूंजीवादी व्यवस्था के लिए अमेरिका तथा यूरोप द्वारा गैर साम्यवादी देशों पर अधिपत्य स्थापित रखने की चेष्टा शामिल

थी। मुख्य रूप से यह निम्न ध्यान देने योग्य बातों से प्रदर्शित होता है कि इण्डोचीन में, वियतनाम का युद्ध, क्युबा पर आर्थिक प्रतिबंध, इण्डोनेशिया में समाजवादियों का नरसंहार, गुटनिरपेक्ष देशों के नेताओं का विनाश ताकि उनके स्थान पर पश्चिमी देशों के मित्र नेताओं को स्थापित किया जा सके। अब युद्ध यूरोप कि भूमि पर नहीं लड़े जाने थे बल्कि वे अन्य महाद्वीपों पर निर्यात कर दिए गए थे। ब्रिटिशों द्वारा कोशिश की जा रही थी कि वे अपने सामरिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक हितों को कामनवेल्थ के द्वारा बनाए रख सकें। विश्व शक्ति सन्तुलन में परिवर्तन ने पूंजीवादी पश्चिम के नेतृत्व में नए अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, संस्थानों जैसे विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) को स्थापित किया था। यह केवल साधारण रूप से 'तीसरे विश्व' में पूंजीवाद के विकास को ही सहयोग नहीं कर रहे थे बल्कि यह सुनिश्चित भी कर रहे थे कि ये देश पूंजीवादी व्यवस्था का हिस्सा बने रहें और इन पर निर्भर बने रहें। हम पश्चिम एशिया में, विशेष रूप से चीन, चाहे अफगानिस्तान को छोड़ भी दिया जाए (जो सबसे स्पष्ट उदाहरण हैं) में स्वयं अपने हितों के लिए संकट के समय अमेरिका और यूरोपीय सहयोग के परिणामों को देख सकते हैं। यह अकसर कहा जाता है कि यूरोप के छः सदस्यों वाली कोयले व स्टील समुदाय वाली संस्था जो 1952 में बनी थी वह एक कठिन और लम्बे मार्ग से 1992 में यूरोपीय यूनियन बन गई जो कि औनिवेशीकरण की समाप्ति तथा अमेरिकी प्रभुत्व के काल में आपसी सहयोग दे सकेगा। 1975 में विश्व के अमीरतम देशों ने G-8 की स्थापना की जो एक शक्तिशाली समूह बन कर उभरा।

यह सब तीसरे विश्व के राष्ट्रों के स्वतंत्र विकास पर तथा समाजवादी देशों की 'बढ़ती शक्ति जो एक अत्यंत शक्तिशाली ब्लाक बन रहा था की ओर एक आक्रामक नीति का द्योतक था लेकिन दूसरी तरफ सोवियत संघ की पृथक्कता समाप्त हुई। 1949 की चीनी क्रांति का अर्थ था एक नये समाजवादी राज्य का उदय। वास्तव में समाजवाद एक अंतर्राष्ट्रीय परिघटना बन गया था जो राष्ट्रीय मुक्ति का समर्थक और इस प्रकार साम्राज्यवाद विरोध से जुड़ा था। इन सभी कारकों ने पश्चिमी यूरोप के अविवादित वर्चस्व को प्रभावित किया। राष्ट्रवादी नेता चाहे वे स्वयं साम्यवादी न हों पूरे एशिया तथा अफ्रीका में समाजवादी विचारों से प्रभावित थे। इनमें प्रमुख नेता थे नेहरू, यासर अराफात, नासिर, टीटो, नकरूमा तथा एल्जीरिया में फलान (FLN) आदि। वियतनाम मोजाम्बिक, क्यूबा, चिली, निकारगुआ आदि में कई क्रांतियों में विजय प्राप्त हुई थी। ज्यादातर लैटिन अमेरिका के देश समाजवादी विकल्पों की ओर झुक रहे थे तथा इजिप्ट (मिस्र) इरान, ईराक में साम्राज्यवाद विरोधी ताकतों ने जड़ पकड़नी आरम्भ कर दी थी। एक राजनीतिक विचारक एजाज अहमद के अनुसार – 'समाजवाद एक केन्द्रीय तथ्य के रूप में उभरा था जो आस-पास प्रेरणा तथा संघर्ष दोनों को आकार दे रहा था।'

साम्रज्यवादी देशों में, 1917 कि क्रांति के मुक्तिपरक विचारों ने द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् एक नई उपलब्धि प्राप्त की थी, लोगों को प्रेरणा दी थी, नस्लवाद विरोध, महिलाओं की समानता, कामगारों/श्रमिकों का सम्मान अल्पसंख्यकों के अधिकार आदि विश्व के बहुत से लोकप्रिय आन्दोलनों के प्रमुख मुद्दे बन गए थे। यह काल इस बात का भी गवाह है कि उस समय बहुत सी श्रमिक यूनियनें, महिलाओं, विद्यार्थियों, रंगमंच के कलाकार, लेखक तथा सांस्कृतिक कार्यकर्त्ताओं की संस्थाएं हर तरह से काम कर रही थीं। 1960 के दशक में मुख्य रूप से प्रतिष्ठान विरोधी भावनाओं का काल था। विशेष रूप से फ्रांस में विद्यार्थियों का विरोध बड़े अच्छे तरीके से सफल हुआ था। इसके बाद अमेरिका में वियतनाम युद्ध विरोधी प्रतिरोध स्वयं में स्मरणीय है। संयुक्त राष्ट्र ने इस संदर्भ में अपनी सहयोगी अंगों जैसे यूनेस्को आदि की स्थापना की। यह अलग-अलग समूहों की स्वतंत्रता, शक्ति, जेन्डर की समानता, प्रतिरोध, नस्लवाद तथा देशी लोगों के अधिकारों के समर्थन के लिए बनाए गई संस्था थी यद्यपि यह शक्तिशाली राष्ट्रों के प्रभुत्व में थी।

बोध प्रश्न 1

1) द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् शक्ति संतुलन में क्या परिवर्तन आए थे? 100 शब्दों में व्याख्या कीजिए?

....

....

....

....

....

....

2) विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की स्थापना के पीछे क्या उद्देश्य थे? 100 शब्दों में चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

....

13.4 शीत युद्ध

सोवियत संघ, तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच की भीषण शत्रुता जिसे शीतयुद्ध का नाम दिया गया था को समझने के लिए ऊपर वर्णित संदर्भ को समझना होगा। इसे इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है। "शान्ति काल का बिना शस्त्रों का युद्ध" यह दो महाशक्तियों के बीच "कूटनीति युद्ध" था जिसका प्रमुख आधार विचारात्मक नफरत तथा राजनीतिक अविश्वास था। यह दोनों महाशक्तियों के बीच एक बिना हथियारों का संघर्ष था और किसी औपचारिक युद्ध की घोषणा नहीं हुई थी। दोनों महाशक्तियों ने एक दूसरे से कूटनीतिक संबंध बनाए रखे थे। यह अमेरिका तथा सोवियत संघ के बीच एक द्विध्रुवीय मुकाबला था जिसमें समर्थक राष्ट्र या महाशक्तियों के उपग्रह भी शामिल थे। परंतु जैसा की हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं कि युद्ध के पश्चात् पूरे विश्व में जो परिवर्तन हो रहे थे उनका यह बहुत संकीर्ण वर्णन है तथा यह पूर्णतः ठीक भी नहीं है।

'शीत युद्ध' जिसकी शुरुआत द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् हो गई थी उसकी समाप्ति 1989 में सोवियत संघ के विघटन के बाद हुई थी। यह यूरोप में राजनीतिक शक्तियों के पुनः गठन तथा विश्व के शक्ति सन्तुलन में परिवर्तन के कारण हुआ था। पूंजीवादी शक्तियाँ अपनी नीतियों से सोवियत संघ को अलग-थलग करके अपने प्रबल शत्रु साम्यवाद को समाप्त करना चाहती थी। यह राजनीति केवल सोवियत संघ को सीमित करने की नहीं थी बल्कि सभी समाजवादी विकल्पों को तबाह करने तथा संगठित होने की सभी संभावनाओं को भी समाप्त करने की थी। पुनः सम्पूर्ण विश्व इस शीत युद्ध के क्षेत्र में आ गया था परंतु इसमें वह क्षेत्र प्रमुख थे जहाँ राष्ट्रीय नेतृत्व महाशक्ति के हितों में बाधक थे। यहां तक कि उन्हें वास्तविक गुटनिरपेक्षता भी स्वीकार्य नहीं थी। दूसरी तरफ सफल क्रांति के

परिणामस्वरूप चीन, वियतनाम, क्यूबा, चिली तथा पूर्वी यूरोप में जनवादी लोकतंत्र आने से सोवियत संघ तथा समाजवादी राष्ट्र अफ्रीका तथा एशिया के देशों का सहयोग प्राप्त करने की कोशिश कर रहे थे। इन सभी देशों को सोवियत संघ से मित्रता पूर्वक सहयोग प्राप्त हुआ था। यह अलग-थलग नहीं रहा था। भारत का स्टील उद्योग इसका एक सबूत है। क्यूबा का एक स्वतंत्र राष्ट्र बना रहना सोवियत संघ के सहयोग के बिना असंभव था। चीन की क्रांति को सोवियत संघ से महान सहयोग मिला था परंतु 1970 के दशक में उन दोनों के बीच मतभेद उभर आए।

इन सब गहन तथ्यों की मौजूदगी के बाद भी पूरे काल को 'ठण्डा' या वास्तविक हिंसा रहित होने के रूप में चिन्हित नहीं कर सकते हैं। एजाज अहमद के अनुसार "द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति से सोवियत संघ के विघटन तक के 45 वर्षों में निरंतर, घातक तथा एतिहासिक रूप से अद्वितीय गृह युद्ध विश्व स्तर पर हुआ था।'' यह कहना केवल आंशिक रूप से ठीक होगा कि अमेरिका तथा सोवियत संघ के बीच सीधी गोलीबारी का युद्ध नहीं हुआ था" क्योंकि लगभग 200 युद्ध लड़े गए थे। ये सभी युद्ध तीसरे विश्व में समाजवादी पहलों को इन नवस्वतंत्र राष्ट्रों में फैलने से बचाने के लिए थे। दोनों शक्ति स्तम्भ अपनी विचारधाराओं को लोकप्रिय बनाने के लिए गहन प्रचार कर रहे थे। सोवियत संघ द्वारा इसके लिए 'कॉमिन्फ्रार्म' नामक साम्यवादी सूचना ब्यूरो तथा 'रेडियो मास्को' स्थापित किया था साथ ही उन्होंने साम्यवादी दलों का अन्य राष्ट्रों में भी समर्थन दिया था। अमेरिका ने रेडियो समाचार कार्यक्रम शुरू किया था उसका नाम "वाइस ऑफ अमेरिका" था। इसके अलावा अमेरिका ने अन्य राष्ट्रों में साम्यवाद विरोधी दलों तथा आन्दोलनों का समर्थन भी किया था। मार्च 1947 को अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रूमैन ने अपना सिद्धान्त ट्रूमैन डॉक्टरिन (Truman Doctrine) के नाम से घोषित किया था। इसका उद्देश्य साम्यवाद को सीमित करना तथा उसका विरोध करना था। इसी उद्देश्य को लेकर 'मार्शल प्लान' भी लाया गया था जिसमें यूरोपीय देशों को पूंजीवादी तरीके की अर्थव्यवस्थाओं के पुनर्निर्माण हेतु आर्थिक सहायता उपलब्ध करवाई गई थी। शर्त के साथ आर्थिक सहायता देना अमेरिका द्वारा अपना प्रभुत्व कायम रखने का प्रमुख हथियार था। वहीं दूसरी ओर 1960 के दशक से 1970 के दशक के बीच साम्यवादी दलों के नेतृत्व में उपनिवेश विरोधी विद्रोह एशिया तथा अफ्रीका में करवाए गए थे। इसमें हो ची मिन्ह (Ho Chi Minh) तथा समोरा मिशेल (Machel) इन युद्धों से विश्व में हीरो बन गए थे। उस समय सोवियत रूस तथा चीन ने इनका समर्थन किया था जबकि अमेरिका तथा यूरोप के पूंजीवादी देशों ने उनका विरोध किया था।

कोरिया, वियतनाम तथा अफगानिस्तान तीन क्षेत्रों के संघर्ष युद्ध क्षेत्र बन गए थे। कोरिया तथा वियतनाम युद्ध अमेरिका की आक्रमकता का परिणाम था जो कि उत्तरी साम्यवादी क्षेत्र को दक्षिणी क्षेत्र के साथ साम्यवादी राज्य के एकीकरण से बचाना चाहता था। उत्तरी कोरिया के युद्ध में हार जाने के बाद 1953 में अमेरिका ने अपनी सेनायें दक्षिणी कोरिया में तैनात कर रखी थी। इसके अलावा उसने उन्हें आर्थिक सहायता भी दी थी, ताकि वह वहां अपना प्रभुत्व कायम रख सके। अफगानिस्तान में अमेरिका ने सामंती युद्ध सरदारों (Warlords) को सहयोग दिया था जिसके विरोध में सोवियत संघ लोकतांत्रिक व्यवस्था की ओर बढ़ने को सहयोग दे रहा था। यह आगे चल कर ऐसा भयानक संघर्ष का क्षेत्र बन गया जिसके दुष्परिणाम आज भी महसूस किए जा रहे हैं।

इसी बीच अमेरिका परमाणु शक्ति धारक होने का विशेष दर्जा प्राप्त कर चुका था। परंतु सोवियत संघ इस क्षेत्र में उसके प्रतिद्वंद्वी की तरह उभर रहा था। 1949 तक आते-आते यह हथियारों की दौड़ तथा परमाणु हथियारों का विस्तार इस शताब्दी की विशेषता बन गया था। हालांकि इसकी तृतीय विश्व युद्ध में तो परिणति नहीं हुई परंतु इसने एक पूरी पीढ़ी के लोगों को परमाणु युद्ध के खतरे में डाल दिया था।

इसलिए एक विशेष सीमित संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि शीतयुद्ध के काल में शांति तथा स्थिरता बनी रही थी। यद्यपि सालों तक इन दो महाशक्तियों के सह-अस्तित्व आपसी प्रतियोगिता तथा पूंजीवादी एवं समाजवादी संघर्षों के बीच साथ-साथ बने रहे थे।

13.5 शताब्दी का अन्तिम चौथाई भाग तथा समाजवाद का धराशायी होना

1989-90 के समय में सोवियत संघ तथा पूर्वी यूरोप के समाजवादी राष्ट्रों में संकट तथा उनके अचानक धराशायी होने से राजनीतिक शक्ति संतुलन की ताकतों को तथा मुक्ति परक राजनीतिक व्यवस्थाओं की प्रगति को एक धक्का लगा था। इससे एक नए एक ध्रुवीय विश्व का उदय हुआ था। जिसका एक नया आर्थिक ढांचा था। इसने अमेरिका के प्रभुत्व को एक मात्र महाशक्ति के रूप में और आगे बढ़ाया था।

यह बदलाव बहुत से कारकों का परिणाम था जो कि 1970 में वियतनाम की समाजवादी ताकतों की जीत के साथ आरम्भ हुआ था। लेकिन यही काल उस समय कई प्रतिक्रांतियों का भी दृश्यक जो चिली से शुरू हुई थी। इसके पश्चात् लैटिन अमेरिका पर भारी अत्याचार हुए, क्रमिक रूप से सत्ता परिवर्तन हुए तथा राजनीतिक समीकरणों के परिणामस्वरूप वहां अमेरिकी हितैषी तानाशाही व्यवस्थाओं की स्थापना हुई थी। बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में लैटिन अमेरिका के देश पुनः अपनी स्वायतत्ता प्राप्त करने में सफल हुए थे। इन्होंने कई नीति परिवर्तनों द्वारा अमेरिकी आर्थिक प्रभुत्व को चुनौती भी दी थी।

समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं का सबसे महत्त्वपूर्ण संकट यह था कि समाजवादी क्रांतियाँ जिन भी देशों में हुई थी वे सभी पिछड़ी हुई तथा निम्न दर्जे के आर्थिक विकास वाली थी। इसलिए उन अर्थव्यवस्थाओं को अपना विकास तीव्र गति से करके अपने देशवासियों को उन्नत पूंजीवादी देशों के समान लाभ तथा सुविधाएं उपलब्ध करवानी थी। अपनी विचारधारा के अनुरूप उन्हें अपने नागरिकों को यह उच्च्य जीवन स्तर उपलब्ध करवाना था वो भी समानता के साथ। इसलिए इनकी नीतियों को लम्बे समय तक बनाए रखना मुश्किल था तथा कठिनाईयां बढ़ाने वाली थी जिसे कि वहाँ के नागरिकों ने वायदों को झुठलाने वाला समझा। इन आर्थिक संकटों के कारण ही समाजवाद का विनाश हुआ था। सोवियत संघ के धराशायी होने का प्रमुख कारण उसका पूरे विश्व के समाजवादी देशों को क्रांतियों और नये उभरे राष्ट्रों की स्वतंत्र विकास योजनाओं के लिए समर्थन एवं आर्थिक निवेश उपलब्ध करवाना भी था। क्यूबा इसका एक सुपरिचित उदाहरण था और दूसरा भारत का स्टील उद्योग था। सोवियत संघ के धराशायी होने का सबसे महत्त्वपूर्ण कारक था सोवियत संघ का विश्व में नाटो (NATO) तथा उसके मित्र राष्ट्रों की सम्मिलित शक्ति का सामना करने और शक्ति संतुलन को बनाए रखने में होनेवाला बढ़ता खर्च का बोझ तथा संसाधनों की खपत थी। परमाणु तथा हथियारों की दौड़ का सीधा प्रभाव उपभोक्ता उद्योगों पर पड़ रहा था। साम्यवादी चीन तथा सोवियत संघ के बीच मतभेद भी बढ़ गए थे। दूसरी ओर अमेरिका ने चीन के प्रति खुले द्वार (Open Door) और मेल-मिलाप की नीति अपनाई थी। सोवियत संघ के धराशायी होते ही समान समाजवादी विचारधारा वाले पूर्वी यूरोप की अर्थव्यवस्थाएं भी धराशायी हो गई थी। इसके परिणामस्वरूप अमेरिका का तीसरे विश्व की अर्थव्यवस्थाओं तथा राष्ट्रीय सरकारों पर दबाव और बढ़ गया था। अब अमेरिका अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में प्रभुत्व प्राप्त कर चुका है। सुरक्षा परिषद और संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं पर हावी है। विभिन्न देशों की राजनीतिक व्यवस्था तथा आर्थिक नीतियों को अपने अनुरूप चला रहा है। इराक, अफगानिस्तान, गाजा का समर्थन तथा बहुत से अन्य संघर्ष पूरे विश्व में शक्तिशाली देशों के शक्तिशाली साम्राज्यवादी अचुनौतिपूर्ण प्रभुत्व के कारण हुए हैं। और यह बिना अन्य देशों का वास्तविक शासन चलाए उन पर प्रभुत्व कायम है।

बोध प्रश्न 2

1) शीत युद्ध का क्या अर्थ है? इसके क्या कारण थे? 100 शब्दों में वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

2) समाजवाद क्यों असफल हो गया? इसका 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

13.6 सारांश

जैसे कि आपने देखा द्वितीय विश्व युद्धोत्तर काल में विश्व में बहुत से नए घटनाक्रम हुए थे। इन्होंने मानव को उन्नति तथा स्वतंत्रता तथा समानता के मार्ग पर आगे बढ़ाया। इसे एक नए लोकप्रिय आन्दोलन के रूप में देखा जा सकता है जिसके प्रमुख मुद्दे जीवन यापन के साधन, सम्मान तथा सांस्कृतिक आकाक्षाएं थी। यह प्रमुख रूप से समाजवादी विचारों एवं प्रयोगों से प्रेरित था। समाजवाद के पतन का विकासशील देशों पर बुरा प्रभाव पड़ा था। इसने विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों पर आर्थिक दबावों को और अधिक ताकतवर बना दिया था। इससे परिणामस्वरूप उन्नत तथा विकासशील देशों के बीच असमानताएं और अधिक बढ़ गई थी। इसके परिणामस्वरूप संसाधनों के लिए संघर्ष और अधिक बढ़ गए हैं जिन्हें बेहतर जीवन के लिए संघर्ष के जगह धर्म और पहचान के संघर्षों में बदलने की कोशिश हो रही है। जबकि ज्यादातर संसाधन विकासशील देशों के नियंत्रण में थे। इसलिए विकसित देश उन देशों की आन्तरिक राजनीति को भी प्रभावित करने लगे थे। इस एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था ने विकास के लिए संघर्ष कर रहे देशों के अपने देशवासियों के जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने के विकल्पों को सीमित कर दिया है। फूट डालो और राज करो की नीतियाँ, साम्राज्यवाद के जमाने की याद दिलाती हैं जो एक-धुव्रीय विश्व को परिलक्षित करता है।

13.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 13.2 देखें।

2) भाग 13.3 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 13.4 देखें।

2) भाग 13.5 देखें।